आरक्षित निर्णय

उत्तराखण्ड उच्च न्यायालय नैनीताल,

रिट याचिका (एम/एस) संख्या 1491/2014

उधम सिंह नगर दुग्ध उत्पादक सहकारी संघ लि0 .....याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तराखण्ड सूचना आयोग और अन्य .....उत्तरदाता।

साथ

रिट याचिका (एम/एस) संख्या 1492/2014

उधम सिंह नगर दुग्ध उत्पादक सहकारी संघ लि0 .....याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तराखण्ड सूचना आयोग और अन्य .....उत्तरदाता।

साथ

रिट याचिका (एम/एस) संख्या 1493/2014

उधम सिंह नगर दुग्ध उत्पादक सहकारी संघ लि0 .....याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तराखण्ड सूचना आयोग और अन्य .....उत्तरदाता।

साथ

रिट याचिका (एम/एस) संख्या 1494/2014

उधम सिंह नगर दुग्ध उत्पादक सहकारी संघ लि0 .....याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तराखण्ड सूचना आयोग और अन्य .....उत्तरदाता।

साथ

रिट याचिका (एम/एस) संख्या 1496/2014

उधम सिंह नगर दुग्ध उत्पादक सहकारी संघ लि0 .....याचिकाकर्ता

बनाम

उत्तराखण्ड सूचना आयोग और अन्य .....उत्तरदाता।

याचिकाकर्ता के अधिवक्ता श्री ललित बेलवाल

राज्य की स्थायी अधिवक्ता श्री बी0एस0परिहार

निर्णय सुरक्षित–05.01.2018

फैसले की तारीख–12.01.2018

माननीय राजीव शर्मा, न्यायमूर्ति

चूंकि उपरोक्त शीर्षक वाली रिट याचिकाओं में कानून और तथ्यों के सामान्य प्रश्न शामिल/अर्न्तवलित हैं, अतः इन्हें एक साथ लेकर सामान्य निर्णय के द्वारा अधिनिर्णीत किया जा रहा है। स्पष्टता बनाये रखने के लिए 2014 के डबलूपीएमएस संख्या 1491 के तथ्यों को ध्यान में रखा गया है।

2. इन याचिकाओं के निर्णय के लिए आवश्यक ''प्रमुख तथ्य'' यह हैं कि उत्तरदाता संख्या 3 ने दिनांक 05.03.2014 के आवेदन के माध्यम से याचिकाकर्ता से जानकारी मांगी है।

3. याचिकाकर्ता ने उत्तरदाता/प्रत्यर्थी संख्या 3 को दिनांक 14.03.2014 के माध्यम से शुल्क जमा करने के पश्चात जानकारी प्राप्त करने के लिए सूचित किया।

4. उत्तरदाता संख्या 3 ने एक अपील अपीलीय प्राधिकरण के समक्ष दायर की। अपीलीय प्राधिकारण द्वारा अपील स्वीकार कर ली गयी थी।

5. इसके बाद याचिकाकर्ता ने अपीलीय प्राधिकरण के समक्ष द्वितीय अपील दायर की, जिसे दिनांक 16.05.2014 को यह मानते हुए खारिज कर दिया गया कि याचिकाकर्ता प्रबंध निदेशक द्वारा अपील दायर नहीं की जा सकती है।

6. इस न्यायालय के समक्ष विचार के लिए प्रश्न यह है कि क्या द्वितीय अपील याचिकाकर्ता द्वारा सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 (जिसे इसके बाद अधिनियम,2005 के रूप में संदर्भित किया जायेगा) की धारा 19 के तहत दायर की जा सकती है।

7. सूचना का अधिकार अधिनियम,2005 को नागरिकों के लिए सार्वजनिक प्राधिकरणों के नियंत्रण में सूचना तक पहुंच सुनिश्चित करने के लिए, सूचना के अधिकार की व्यावहारिक व्यवस्था स्थापित करने के लिए प्रत्येक सार्वजनिक प्राधिकरण के कामकाज में पारदर्शिता और जबावदेही को बढावा दिया जा सके, केन्द्रीय सूचना आयोग और राजय सूचना आयोगों का गठन और उससे जुडे मामलों के लिए अधिनियमित किया गया है। यह दिनांक 12.10.2005 से लागू हो गया है।

8. अधिनियम, 2005 की धारा 2(ए) ''सुमचित सरकार'' को परिभाषित करती है।

9. अधिनियम, 2005 की धारा 2(ई) ''सक्षम प्राधिकारी'' को परिभाषित करती है।

10. अधिनियम, 2005 की धारा 2(एच) ''लोक प्राधिकारी'' को परिभाषित करती है।

11. अधिनियम, 2005 की धारा 2(जे) ''सूचना का अधिकार'' को परिभाषित करती है।

12. अधिनियम, 2005 की धारा 2(के) ''राज्य सूचना आयोग'' को परिभाषित करती है।

13. अधिनियम, 2005 की धारा 3 इस अधिनियम के प्रावधानों से सम्बन्धित है, सभी नागरिकों को सूचना का अधिकार होगा।

14. अधिनियम, 2005 की धारा 4 के तहत सार्वजनिक प्राधिकरणों के दायित्व निर्धारित किए गए हैं।

15. लोक सूचना अधिकारियों का पदनाम अधिनियम, 2005 की धारा 5 के तहत प्रदान किया गया है।

16. अधिनियम की धारा 6 सूचना अभिप्राप्त करने के लिए अनुरोध का प्रावधान करती है।

17. अधिनियम, 2005 की धारा 7 में अनुरोध के निपटारों की प्रक्रिया का प्रावधान किया गया है।

18. धारा 7(1) एवं धारा 7 की उपधारा 3 का खण्ड क निम्नानुसार है–

> 7. अनुरोध का निपटारा (1) धारा 5 की उपधारा (2) के परन्तुक या धारा 6 की उपधारा (3) के परन्तुक के अधीन रहते हुए, धारा 6 के अधीन अनुरोण के प्राप्त

होने पर यथाशक्ति, केन्द्रीय लोक सूचना अधिकारी या राज्य लोक सूचना अधिकारी, यथा–संभव शीघ्रता से, और किसी भी दशा में अनुरोध की प्राप्ति के तीस दिन के भीतर ऐसी फीस के संदाय पर, जो विहित की जाए, या जो सूचना उपलब्ध कराएगा या धारा 8 और धारा 9 में विनिर्दिष्ट कारणों में सी किसी कारण से अनुरोध को स्वीकार करेगाः

(3) जहॉ, सूचना उपलब्ध कराने की लागत के रूप में किसी और फीस के संदाय पर सूचना उपलब्ध कराने का विनिश्य किया जाता है, वहॉ यथास्थिति, केन्द्रीय लोक सूचना अधिकारी या राज्य लोक सूचना अधिकारी अनुरोध करने वाले व्यक्ति को,–

(क) उसे द्वारा यथा अवधारित सूचना उपलब्ध कराने की लागत के रूप में और फीस के ब्यौरे, जिनके साथ उपधारा (1) के अधीन विहित फीस के अनुसार रकम निकालने के लिए की गयी संगणाएं होंगी, देते हुए उससे उस फीस को जमा करने का अनुरोध करते हुए कोई संसूचना भेजेगा और उक्त संसूचना के प्रेषण और फीस के संदाय के बीस मध्यवर्ती अवधि को उस धारा में निर्दिष्ट तीन दिन की अवधि की संगणना करने के प्रयोजन के लिए अपवर्जित किया जाएगा;

19. अधिनियम, 2005 की धारा 19 की सरल भाषा के अनुसार ऐसा कोई व्यक्ति, जिसे धारा 7 की उपधारा 1 या उपधारा 3 के खण्ड खण्ड क में निर्दिष्ट समय के भीतर कोई विनिश्चय प्राप्त नहीं हुआ है या जो, यथास्थिति, केन्द्रीय लोक सूचना अधिकारी या राज्य लोक सूचना अधिकारी के किसी विनिश्चय से व्यथित है, उस अवधि की समाप्ति से या ऐसे किसी विनिश्चिय की प्राप्ति से तीस दिन के भीतर ऐसे अधिकारी को अपील कर सकेगा।

20. अधिनियम, 2005 की धारा 19 की उपधारा 3 के अनुसार, उपधारा (1) के तहत निर्णय के विरूद्ध द्वितीय अपील उस तारीख से 90 दिनों के भीतर दायर की जा सकती है, जिस दिन निर्णय हुआ था।

21. इस प्रकार धारा 19(1) और (3) में सामंजस्य स्थापति करने से यह स्पष्ट होता है कि कि कोई व्यक्ति जो धारा 7 की उपधारा (1) या उपधारा (3) के खण्ड (क) में विनिर्दिष्ट समय के भीतर कोई विनिश्चय प्राप्त नहीं करता है या केन्द्रीय लोक सूचना अधिकारी या राज्य लोक सूचना अधिकारी के विनिश्चय से व्यथित है, वह प्रथम अपील दायर कर सकता है और यदि वह विनिश्चय से संतुष्ट नहीं है, तो धारा 19 की उपधारा (3) के अधीन दूसरी अपील दायर कर सकता है।

22. लोक सूचना अधिकारी अपने समक्ष उठाये गये मुददे को तय करने के लिए अर्द्ध–न्यायिक प्राधिकरण है। ऐसा विनिश्चय करने की अपेक्षा की जाती है कि अधिनियम, 2005 की धारा 6 के अधीन दायर आवेदन पर चाही गयी विशेष सूचना प्रदान की जानी है या नहीं और यदि विनिश्चय लोक प्राधिकारी के विरूद्ध है तो लोक प्राधिकारी केन्द्रीय या राज्य सूचना आयुक्त के समक्ष, यथास्थिति, सम्बन्धित सूचना आयोग के विनिश्य के विरूद्ध और उसके

पश्चात भारतीय संविधान के अनुच्देछ 226/227 के अधीन रिट याचिका में उच्च न्यायालय के समक्ष अपील कर सकता है।

23. अपीलीय प्राधिकरण द्वारा पारित आदेश में एक त्रुटि है। उत्तरदाता संख्या 2 ने केवल 2014 की अपील संख्या 1 का उल्लेख किया है। एक आवेदन की अस्वीकृति के खिलाफ केवल एक अपील विचारणीय थी। पहला अपीलीय प्राधिकरण एक ही अपील में कई आवेदनों पर निर्णय नहीं ले सका।

24. माननीय सर्वोच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति ने मुख्य सूचना आयुक्त और एक अन्य बनाम मणिपुर राज्य और एक अन्य 2011 (15) एससीसी 1 के मामले में, अभिनिर्धारित किया है कि धारा 18 के अधीन शक्ति की प्रकृति चरित्र में पर्यवेक्षी है, जबकि धारा 19 के अधीन प्रक्रिया एक अपीलीय प्रक्रिया है और एक व्यक्ति, जो उस सूचना को जो उसके द्वारा चाही गयी थी, प्रदान करने से इंकार करने से व्यथित है। वह केवल कानून में प्रदान अर्थात धारा 19 के अधीन प्रक्रिया का पालन करके निवारण की मांग कर सकता है। धारा 19 के साथ धारा 7 उस व्यक्ति को एक पूर्ण वैधानिक तंत्र प्रदान करती है जो सूचना प्राप्त करने के इंकार से व्यथित है। माननीय न्यायमूर्ति ने आगे कहा है कि सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 सूचित नागरिकों के माध्यम से लोकतंत्र को मजबूत करता है, लेकिन साथ ही जहॉ गोपनीयता की आवश्यकता होता है, वहॉ इस आदर्श को संरक्षित करने के समग्र राज्य हित के साथ संतुलित करता है। माननीय न्यायमूर्ति ने आगे निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया है–

> ''6. जैसा कि इसकी प्रस्तावना से पता चलता है कि इस अधिनियम को एक लोकतांत्रिक गणराज्य के मूल संवैधानिक मूल्यों को मजबूत करने के लिए प्रत्येक सार्वजनिक प्राधिकरण के कामकाज में पारदर्शिता और जावबदेही को बढावा देने के लिए अधिनियमित किया गया था। यह स्पष्ट है कि संसद ने एक जानकार नागरिक के अधिकारों को ध्यान में रखते हुए उक्त अधिनियम को लागू किया, जिसमें भ्रष्टाचार पर अंकुश लागने और सरकार और उसके उपकरणों को जवाबदेह बनाने में सूचना की पारदर्शिता महत्वपूर्ण है। इस अधिनियम का उददेश्य सरकारी प्रक्रिया के कामकाज को जानने के नागरिकों के अधिकार के साथ संवेदनशील गोपनीयता को बनाये रखने के लिए परस्पर विरोधी हितों का सामंजस्य स्थापित करना है ताकि लोकतांत्रिक आदर्श की सर्वोच्चता को संरक्षित किया जा सके। प्रस्तावना स्पष्ट रूप से दर्शित करती है कि यह अधिनियम एक खुले समाज की अवधारणा पर आधारित है।
>
> 7. एक ''खुली सरकार'' की उभरती अवधारणा पर लगभग तीन दशक पहले, इस न्यायालय की संवैधानिक पीठ ने स्टेट ऑफ यू0पी0 बनाम राज नारायण 1 (एस0सी0सी0 पृष्ठ 453 के पैरा 74) में न्यायाधीश मैथ्यू के माध्यम से बोलते हुए अभिनिर्धारित किया–
>
> ''74. ... इस देश के लोगों को प्रत्येक सार्वजनिक कारणों को जानने का अधिकार है, जो कुछ भी उसके सार्वजनिक पदाधिकारियों द्वारा सार्वजनिक तरीके से किया जाता है। वे प्रत्येक सार्वजनिक लेन–देन का विवरण जानने

के हकदार हैं। जानने का अधिकार, जो अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की अवधारणा से लिया गया है। ह ालांकि निरपेक्ष नही है, एक ऐसा कारक है, जो किसी को सावधान कर सकता है, जब संव्यवहार के लिए गोपनीयता का दावा किया जाता है, जिसका किसी भी कीमत पर सार्वजनिक सुरक्षा पर कोई असर नहीं हो सकता है। गोपनीयता के आवरण के साथ, आम नियमित व्यवसाय, जनता के हित में नहीं है। इस तरह की गोपनीयता शायद ही कभी वैध रूप से वांछित हो सकती है।'' (एआईआर पेज 884, पैरा 74)

8. एक अन्य संवैधानिक पीठ ने एस.पी.गुप्ता बनाम भारत संघ 2 के मामले में राज नारायण 1 पर निर्धारित अनुपात पर निर्भर करते हुए अभिनिर्धारित किया–

''67. ... एक खुली सरकार की अवधारणा जानने के अधिकार से प्रत्यक्ष उदगम है, जो अनुच्छेद 19(1) (ए) के तहत गारंटीकृत अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार में निहित प्रतीत होती है। इसलिए सरकार के कामकाज के सम्बन्ध में जानकारी का प्रकटीकरण एक नियम होना चाहिए और गोपनीयता अपवाद केवल तभी उचित है जब सार्वजनिक हित की सख्त आवश्यकता हो। न्यायालय का दृष्टिकोण सार्वजनिक हित की आवश्यकता के साथ लगातार गोपनीयता के क्षेत्र को यथासंभव कम करने का होना चाहिए, हर समय इस बात को ध्यान में रखते हुए कि प्रकटीकरण भी सार्वजनिक हित के एक महत्वपूर्ण पहलू को पूरा करता है। (एआईआर पेज 234, पैरा 66)

(जोर दिया गया।)

9. इसलिए इस न्यायालय की संविधान पीठ के उपर्युक्त निर्णयों के अनुपात से यह स्पष्ट है कि सूचना का अधिकार जो मूल रूप से जानने के अधिकार पर आधारित है, संविधान के अनुच्छेद 19(1) (ए) के तहत गारंटीकृत अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार को मजबूत करने के लिए अधिनियमित किया गया था।

17. तथापि, इस अधिकार की व्यापकता और विस्तार के साथ–साथ एक लोकतांत्रिक गणराज्य में इसके मौलिक महत्व पर विचार करते हुए, यह न्यायालय इस बात से भी अवगत है कि ऐसा अधिकार संविधान के अनुच्छेद 19(2) के तहत उचित प्रतिबंधों के अधीन है।

39. धारा 18 के तहत शाक्ति की प्रकृति चरित्र में पर्यवेक्षी है, जबकि धारा 19 के तहत प्रक्रिया एक अपीलीय प्रक्रिया है और एक व्यक्ति उस जानकारी को जो उसके द्वारा मांगी गयी थी, प्राप्त करने से इंकार करने से व्यक्ति है वह केवल कानून में प्रदान किये गये तरीके अर्थात धारा 19 के तहत प्रक्रिया का पालन करके निवारण की मांग कर सकता है। इसलिए, इस न्यायालय की राय है कि धारा 19 के साथ पठित धारा 7 उस व्यक्ति को एक पूर्ण वैधानिक तंत्र प्रदान करती है जो सूचना प्राप्त करने से इंकार से व्यथित है। ऐसे व्यक्ति को उपरोक्त वैधानिक प्रावधानों का पालन

करके जानकारी प्राप्त करनी होती है। अपीलार्थी का यह तर्क कि धारा 18 के माध्यम से जानकारी प्राप्त की जा सकती है, अधिनियम की धारा 19 के स्पष्ट प्रावधान के विपरीत है।

48. इसके अतिरिक्त अधिनियम की धारा 19 के तहत प्रक्रिया में धारा 18 की तुलना में, उस व्यक्ति के हितों की रक्षा के लिए, जिसे मांगी गयी सूचना देने से इंकार कर दिया गया है, कई सुरक्षा उपाय है। इस संबंध में धारा 19(5) का उल्लेख किया जा सकता है। धारा 19(5) सूचना अधिकारी पर यह साबित करने का भार डालती है कि अनुरोध को अस्वीकार करना न्यायोचित था। इसलिए यह अधिकारी पर है कि वह इंकार को न्यायोचित ठहराये। धारा 18 में ऐसी कोई रक्षोपाय नहीं है। इसके अलावा धारा 19 के तहत प्रक्रिया एक समयबद्ध प्रक्रिया है, परन्तु धारा 18 में कोई सीमा निर्धारित नहीं है। इसलिए दो प्रक्रियाओं में से, धारा 18 और धारा 19 के बीच, धारा 19 के तहत प्रक्रिया उस व्यक्ति के लिए जिसे जानकारी की पहुॅच से वंचित कर दिया गया है, अधिक लाभदायक है।

49. इसका एक दूसरा पहलू भी है धारा 19 के तहत प्रक्रिया एक अपीलीय प्रक्रिया है। अपील का अधिकार हमेशा कानून द्वारा निर्धारित होता है। अपील का अधिकार निम्न मंच की त्रुटियों को ठीक करने के लिए इसकी सहायता और हस्तक्षेप का आहवान करने के लिए एक उच्च मंच में प्रवेश करने का अधिकार है। यह एक बहुत ही मूल्यवान अधिकार है। इसलिए जब कानून अपील का ऐसा अधिकार प्रदान करता है जिसका उपयोग किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा किया जाना चाहिए जो जानकारी देने से इंकार करने के कारण व्यथित है।''

25. माननीय सर्वोच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति ने ''नमित शर्मा बनाम भारत संघ 2013(1) एससीसी 745 के मामले में अभिनिर्धारित किया कि आयोगों में प्रशासनिक निकाय होने के बजाए न्यायालय की तर्ज पर काम करने वाले न्यायाधिकरण होते हैं। माननीय न्यायमूर्ति ने अभिनिर्धारित किया कि

''39. सूचना का अधिकार, किसी भी अन्य अधिकार की तरह असीमित या अप्रतिबंधित अधिकार नहीं है। यह वैधानिक और संवैधानिक सीमाओं के अधीन है। अधिनियम 2005 की धारा 3 में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि सूचना का अधिकार अधिनियम के उपबन्धों के अधीन है। अन्य प्रावधानों के लिए आवश्यक है कि विशिष्ट छूट और उन क्षेत्रों के लिए प्रावधान करने के अलावा जानकारी सार्वजनिक प्राधिकरण द्वारा या उसके नियंत्रण में रखी जानी चाहिए जिन पर अधिनियम के प्रावधान लागू नहीं होते हैं। पृथकता का सिद्धांत अधिनियम 2005 की धारा 10 के रूप में कानून में मिलता है।

40. न ही 2002 का अधिनियम और न ही 2005 का अधिनियम, उनके निरसन प्रावधान के तहत, आधिकारिक गोपनीयता अधिनियम 1923 को निरस्त करता है। यह महसूस किया गया कि सरकारी गोपनीयता अधिनियम,1923 के तहत, पूरी विकास प्रक्रिया को गोपनीयता में रखा गया था और व्यवहारिक रूप से जनता को यह

जानने का कोई अधिकार नहीं था कि उन्हें प्रभावित करने वाली नीतियों को तैयार करने में किस प्रक्रिया का पालन किया गया था और कार्यक्रमों और योजनाओं को कैसे लागू किया जा रहा था। सरकार के कामकाज में खुलेपन की कमी ने सार्वजनिक प्राधिकारणों के कामकाज में अक्षमता और भ्रष्टचार के विकास के लिए एक उपजाउ जमीन प्रदान की। 2005 के अधिनियम का उददेश्य इस व्यापक बुराई को दूर करना और सरकार को उचित लिंक प्रदान करना था। इससे पर्यावरण, आर्थिक और स्वास्थ्य क्षेत्रों में सुधार लाने की उम्मीद थी। जिन्हें मुख्य रूप से सरकार द्वारा नियंत्रित किया जा रहा था।

41. केन्द्रीय और राज्य सूचना आयोगों ने 2005 के अधिनियम के प्रावधानों को लागू करने के साथ–साथ सूचना चाहने वालों और प्रदाताओं को उनके वैधानिक अधिकारों और दायित्वों के बारे में शिक्षित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। विशेषज्ञों के कुछ वर्ग ने राय दी कि 2005 का अधिनियम संविधान के अनुच्छेद 19(1) (ए) के तहत नागरिकों को स्वतंत्र और प्रभावी जानकारी प्रदान करने के लक्ष्य को प्राप्त करने में एक उपयोगी वैधानिक साधन रहा है यह सच है कि सूचना और ज्ञान संसाधनों का लोकतंत्रीकरण लोगों के सशक्तीकरण के लिए महत्वपूर्ण है, विशेष रूप से अधिकारों को प्राप्त करने के साथ–साथ जीवन की गुणवत्ता में सुधार के विकल्पों को बढाने के अवसरों को बढाने के लिए अधिनियम के तहत सूचना के अधिकार के तहत प्रकटीकरण की प्रक्रिया में गोपनीयता या कुछ सुरक्षा को शामिल करना अभी भी अधिक महत्वपूर्ण है। कभी कभी व्यापक लोकहित में जानकारी का खुलासा नहीं किया जाना चाहिए।

52. धारा 12(5) के प्रावधान आवश्यक बुनियादी योग्यता पर चर्चा नहीं करते हैं, लेकिन दो धटकों का उल्लेख करते हैं।

(क) सार्वजनिक जीवन में प्रतिष्ठित व्यक्ति और (ख) उपबन्ध में बताये गये क्षेत्रों में व्यापक ज्ञान व अनुभव के साथ। इस प्रकार प्रावधान मनमानेपन या भेदभाव के तत्व की शुरूआत के परिणामस्वरूप कोई मानदण्ड प्रदान करने की दुर्बलता से ग्रस्त नहीं है। प्रावधानों के अनुसार व्यक्तियों को उल्लिखित क्षेत्रों में प्रतिष्ठित और ज्ञान होना चाहिए। इन क्षेत्रों में ज्ञान और अनुभव सामान्य रूप से उस क्षेत्र में निर्धारित न्यूनतम अपेक्षित योग्यता से पहले होगा। उदाहरण के लिए कानून के क्षेत्र में ज्ञान और अनुभव के लिए एक व्यक्ति को कानून स्नातक होना जरूरी हैं इसी तरह विज्ञान और प्रौद्योगिकी में व्यापक ज्ञान और अनुभव वाले व्यक्ति से कम से कम विज्ञान स्नातक होना या विज्ञान और प्रौद्योगिकी में बुनियादी योग्यता रखने की अपेक्षा की जायेगी। ''समाज सेवा'' ''मॉस मीडिया'' या प्रशासन और शासन'' अभिव्यक्तियों में अस्पष्टता कुछ संदेह पैदा करती है लेकिन निश्चित रूप से, यह अस्पष्टता या संदेह प्रावधान में भेदभाव के तत्व को पेश नहीं करता है। जीवन के इन विभिन्न क्षेत्रों के व्यक्तियों को सम्बन्धित सूचना आयोगों में मुख्य सूचना आयुक्त और सूचना आयुक्त के पद पर नियुक्ति के लिए पात्र माना जाता है। यह विचार का एक विस्तृत क्षेत्र

देता है। और इस कथित अस्पष्टता को हमेशा उपयुक्त सरकार द्वारा अधिनियम की धारा 27 और 28 के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए स्पष्ट किया जा सकता है।

धारा 12(6) की संवैधानिक वैधता

53. इसी तरह, जैसा कि उपर कहा गया है, धारा 12 की उपधारा (6) एक तरह से उसके संदर्भ में अयोग्यता पैदा करती है। इस प्रावधान में अनिश्चिता और अनिश्चय का तत्व हैं इसके उचित गठन पर आसाधारण रूप से एक मुददा यह उत्पन्न होगा कि इन पदों पर नियुक्त होने के लिए व्यक्तियों का कौन सा वर्ग योग्य है। इस प्रावधान के अनुसार, इन पदों पर नियुक्त होने वाले व्यक्ति को कोई व्यवसाय नहीं करना चाहिए था या कोई पेशा नहीं अपनाना चाहिए था। यह कहना कठिन है कि प्रावधान के तहत पात्र व्यक्ति को क्या करना चाहिए और किस अवधि के लिए करना चाहिए। इस धारा में कोई अवधि निर्दिष्ट नहीं की गयी है। सामान्यतः व्यक्ति किसी न किसी अस्वीकार्य श्रेणी के अंतर्गत आते हैं। इसे अलग तरह से रखने के लिए आवश्यक निहितार्थ से, यह व्यवहारिक रूप से सभी वर्गो को बाहर करता है, जबकि यह निर्दिष्ट नहीं करता है कि व्यक्तियों का कौन सा वर्ग उस पद पर नियुक्त होने के योग्य है। अपवर्जन बहुत अस्पष्ट है, जबकि समावेशन अनिश्चित है। यह भ्रम की स्थिति उत्पन्न करता है, जो कानून का इरादा नहीं हो सकता था। यह भी स्पष्ट नहीं है कि अधिनियम के निमाताओं का किस वर्गीकरण को निर्धारित करने का इरदा था। वर्गीकरण का अधिनियम के उददेश्य के साथ कोई सम्बन्ध प्रतीत नहीं होता है। इस तरह के वर्गीकरण का समर्थन करने के लिए कोई बोधगम्य अंतर नहीं है। किस संवर्ग को संरक्षित करने का इरादा है और धारा 12(5) और (6) के संदर्भ में नियुक्ति के लिए विशेष रूप से पात्र बनाया जाना है, यह कुछ ऐसा है जो समझ में नहीं आता है। जहॉ कहीं भी विधायिका वर्गीकरण की अपनी शक्ति का प्रयोग करना चाहती है, वहॉ इसे उचित वर्गीकरण होना चाहिए, जो उपर चर्चा किए गए परीक्षणों को संतुष्ट करता है। हमारे संज्ञान में ऐसा कोइ नियम नहीं लाया गया है, जो धारा 12(6) की भाषा में स्पष्ट अस्पष्टता और असमानता की व्याख्या करने का भी इरादा रखता हो। याचिकाकर्ता के अनुसार, यह एक पूर्ण प्रतिबंध के समान है क्योंकि विधायिका का यह आशय नहीं कहा जा सकता है कि केवल वे व्यक्ति जो धारा 12 की उपधारा (6) की शर्तो के भीतर आदर्श हैं, इस पद पर नियुक्त होने के पात्र होंगे। यदि हम 12(5) और 12 (6) की भाषा को एक साथ पढते हैं, तो उपधारा 6 के अधीन उपबंध उपधारा (5) के अधीन उपबन्धों के विरूद्ध प्रतीत होते है। उपधारा (5) में व्यक्ति से सार्वजनिक जीवन में श्रेष्ठता और निर्दिष्ट क्षेत्र में व्यापक ज्ञान और अनुभव की उपेक्ष की गयी है। इसके विपरीत उपधारा (6) यह अपेक्षा करती है कि ऐसे व्यक्ति को लाभ का कोई पद धारण नहीं करना चाहिए, किसी राजनीतिक दल से जुडा नहीं होना चाहिए, या कोई व्यवसाय नहीं करना चाहिए या कोई पेशा नहीं अपनाना चाहिए। उपधारा (5) का उददेश्य आंशिक रूप से उपधारा (6) की भाषा से

विक्षिप्त है। दूसरे शब्दों में उपधारा (6) में स्पष्टता युक्तियुक्त वर्गीकरण का अभाव है और इसका 2005 के अधिनियम के उददेश्य से कोई सम्बन्ध नहीं है और यदि इसका सरल भाषा में अर्थ लगाया जाता है, तो इसका परिणाम धारा 12 की उपधारा (5) के प्रावधानों को कुछ हद तक विफल कर देगा।

54. विधायिका को संवैधानिक जनादेश के अनुरूप अपनी शक्ति का प्रयोग करना आवश्यक है। विशेष रूप से जो संविधान के भाग तृतीय में निहित है, यदि विवादित प्रावधान उचित वर्गीकरण के बिना समानता और समान विचार के अधिकार से इंकार करता है, तो न्यायालय इसे अमान्य घोषित करने के लिए बाध्य होगी। धारा 12 (6) योग्य व्यक्तियों के वर्ग की बात नहीं करती है, लेकिन व्यवहारिक रूप से सभी व्यक्तियों को क्रमशः केन्द्र और राज्य स्तरों पर मुख्य सूचना आयुक्त या सूचना आयुक्त के पद पर नियुक्त होने से रोकती है। न्यायालय के लिए यह समझना कठिन होगा कि इस खण्ड के तहत किस वर्ग के व्यक्तियों को शामिल किया जाना है। अयोग्यता के नियम को सख्ती से निर्वचन किया जाना चाहिए। यदि कोई व्यक्ति, जो सरकारी सेवा में एक निर्वाचित प्रतिनिधि है, या जो किसी व्यवसाय या पेशे को चलाने वाले लाभ का पद धारण कर रहा है, धारा 12 (6) के संदर्भ में अपात्र है, तो प्रश्न उठता है कि व्यक्तियों का कौन सा वर्ग पात्र होगा। धारा उस ओर से चुप है।

55. मनमानेपन और भेदभाव के तत्व का प्रमाण धारा 12 (6) की भाषा से ही मिलता है, जिसकी जांच दूसरे दृष्टिकोण से की जा सकती है। ऐसी कोई अवधि नहीं बतायी गयी है, जिसके लिए किसी व्यक्ति से कोई व्यवसाय नहीं करने या किसी पेशे को नहीं अपनाने की अपेक्षा की जाती है। यह उनके नामांकन से पहले एक दिन या एक साल भी हो सकता है। यह स्पष्ट नहीं है कि इनमें से किसी भी वर्ग में आने वाले व्यक्तियों को अलग–अलग स्थान पर कैसे रखा जा सकता है। यह अनिश्चितता भेदभाव और मनमानेपन के तत्व को लाने के लिए बाध्य है।

56. अधिनियम की धारा 12 (6) के प्रावधानों में भेदभाव और मनमानेपन के तत्व की उपस्थिति को ध्यान में रखते हुए, अब हमें यह जांच करनी होगी कि क्या इस न्यायालय को इस प्रावधान को संविधान के अधिकार से बाहर घोषित करना चाहिए या उपर लिखित कमियों के बावजूद इसे इसका संभावित प्रभाव देने के लिए इसे पढना चाहिए। हम पहले ही विचार कर चुके हैं कि न्यायालय आमतौर पर एक ऐसा दृष्टिकोण अपनाएगा जो संवैधानिकता के पक्ष में है और यदि आवश्यक हो तो इसे असंवैधानिक घोषित करने के बजाए कुछ शब्द जोडकर प्रावधान को इसका संभावित प्रभाव देने के लिए पढना पंसद करेगा। इस प्रकार, हम धारा 12 (6) के प्रावधानों की व्याख्या मुख्य सूचना आयुक्त और सूचना आयुक्तों की पूर्व नियुक्ति के बजाए, नियुक्ति के बाद लागू होने के रूप में करना पसंद करेंगे। दूसरे शब्दों में, ये अयोग्यताएं केवल तभी लागू होंगी जब किसी व्यक्ति को किसी भी स्तर पर मुख्य सूचना आयुक्त/सूचना आयुक्त के रूप में नियुक्त किया जाता है और वह किसी भी लाभ के पद पर नहीं रहेगा या किसी भी व्यवसाय को जारी नहीं रखेगा या किसी भी

पेशे को आगे नहीं बढायेगा, जो उसने इस तरह की नियुक्ति से पहले किया हों। इस प्रकार इस उपबंध में यह निहित है कि कोई व्यक्ति मुख्य सूचना आयुक्त या सूचना आयुक्त के रूप में अपनी नियुक्ति के साथ–साथ धारा 12 की उपधारा 6 में निर्दिष्ट किसी भी पद पर नहीं रह सकता है। वास्तव में उनकी पिछली नियुक्ति व्यवसाय या पेशे की समाप्ति मुख्य सूचना आयुक्त या सूचना आयुक्त के रूप में उनकी नियुक्ति शुरू होने की पूर्व शर्त है।

धारा 12 (5) की संवैधानिक वैधता

57. 2005 के अधिनियम को लोकतांत्रिक आदर्श की सर्वोच्चत को सुरक्षित करते हुए परस्पर विरोधी हितों के बीच सामंजस्य स्थापित करने और इसे प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले नागरिकों को कुछ जानकारी प्रदान करने के लिए अनिनियमित किया गया ाि। अधिनियम का मूल उददेश्य नागरिकों के सूचना के अधिकार की व्यवहारिक शासन पद्धति स्थापित करना, लो प्राधिकारियों के नियत्रणाधीन सूचना तक पहुॅच सुनिश्चित करना है। इसका उददेश्य अधिकारियों के काम काज में पारदर्शिता और जबावदेही प्रदान करना और बढावा देना है। राज्य द्व ारा शासन के विभिन्न पहलूओं के बारे में जनता को सूचित किया जाना लोकतांत्रिक मूल्य की पूर्व शर्त है। निजता के अधिकार की भी रक्षा की जानी चाहिए क्योंकि ये दोनों प्रतिद्वन्दी हित संविधान के अनुच्छेद 19 (1) (ए) के तहत अपनी उत्पत्ति पाते है। इससे एक प्रभावी न्यायिक प्रक्रिया की आवश्यकता होती है। प्राधिकरण या न्यायाधिकरणों को प्रतिद्वन्दी विवादों को निर्धारित करने और दो परस्पर विरोधी हितो के बीच संतुलन बनाने की जिम्मेदारी सौंपी जाती है। यह वह स्थान है जहॉ 2005 के अधिनियम की योजना उददेश्य और लक्ष्य अधिक महत्व प्राप्त करते हैं।

58. यह जांचने के लिए कि क्या अधिनियम की धारा 12 (5) भेदभाव या असमानता से ग्रस्त है। हम अधिनियम 2005 की योजना की पृष्ठभूमि में अधिनियम के तहत अधिकारियों के न्यायिक कार्यो पर चर्चा कर सकते हैं, जैसा कि उपर चर्चा कि गयी है जिन अधिकारियों को अर्द्ध न्यायिक विषय वस्तु के न्यायिक कार्य करने होते है, वे हैं–

1. केन्द्रीय/राज्य लोक सूचना अधिकारी
2. केन्द्रीय/राज्य लोक सूचना अधिकारी से वरिष्ठ रैंक के अधिकारी जिनके पास अधिनियम की धारा 19 (1) के तहत अपील होंगी; और
3. मुख्य सूचना आयुक्त और सूचना आयुक्तों से मिलकर बना सूचना आयोग (केन्द्रीय/राज्य)

59. धारा 12 (5) के संदर्भ में, मुख्य सूचना आयुक्त और सूचना आयुक्त निर्धारित क्षेत्रों में व्यापक ज्ञान के साथ सार्वजनिक जीवन में प्रतिष्ठित व्यक्ति होने चाहिए। हम पहले ही संकेत दे चुके हैं कि विधायिका द्वारा उपयोग की जाने वाली शब्दावली जैसे, ''मास मीडिया'' या ''प्रशासन या शासन'' अनिश्चित अवधि और आयाम के शब्द हैं। यह सटीक रूप से बताना मुश्किल है कि इन श्रेणियों के तहत व्यतियों का

कौना सा वर्ग पात्र होगा।

60. विधायिका ने अपने विवेक में कोई विशिष्ट योग्यता प्रदान नहीं करने का विकल्प चुना है, लेकिन मुख्य रूप से चयन के मानदण्ड के रूप में उद्धृत विषयों में ''व्यापक ज्ञान और अनुभव'' निर्धारित किया है। यह न्यायालयों को नहीं बताना है कि किसी विशेष पद पर नियुक्ति के लिए योग्यता या अनुभव क्या होना चाहिए। यह करने के लिए पर्याप्त है कि यदि विधायिका स्वयं नियुक्ति के लिए पात्रता के बुनियादी मानदण्ड के रूप में ''ज्ञान और अनुभव'' प्रदान करती है, तो यह संविधान के अनुच्छेद 14 की कठोरता को आकर्षित नहीं करेगा। एक तर्कसंगत और उददेश्यपूर्ण व्याख्या पर धारा 12 (5) में यह व्याख्या करना और पढना यथाचित होगा कि किसी विशेष विषय में ज्ञान और अनुभव के अन्तर्गत उस विषय की आधारभूत योग्यता शामिल है। हम इसे संविधान के अनुच्देछ 14 का उल्लंघन करने वाले मानने के बजाए इस तरह के दृष्टिकोण को प्राथमिकता देंगे। धारा 12 (5) में इस प्रभाव के लिए अंतनिर्हित दिशानिर्देश हैं कि ज्ञान और अनुभव, दो अलग–अलग अवधारणायें होने के कारण उनको सही परिप्रेक्ष्य में समझा जाना चाहिए। इसमें आधारभूत योग्यता के साथ–साथ सम्बन्धित क्षेत्र में अनुभव शामिल होगा, दोनो इस धारा के लिए पूर्व आवश्यकताएं हैं। प्रावधान की भाषा के परिणामस्वरूप यदि कोई अस्पष्टता हो, महत्वहीन है, जो केवल भाषाई प्रकृति की है और जिसे पहले ही नोटिस किया जा चुका है। इसे 2005 के अधिनियम की धारा 27 के तहत केन्द्र सरकार की शक्तियों का प्रयोग करते हुए उचित नियम बनाकर स्पष्ट किया जा सकता है। हम यह पता लगाने में असमर्थ हैं कि धारा 12 (5) के प्रावधान मनमानेपन या भेदभाव के दृष्प्रभाव से ग्रस्त है। हालांकि बिना किसी हिचकिचाहट के, हम यह जोडने में जल्दवाली करेंगे कि इसकी संवैधानिकता को बनाये रखने के लिए कानून और प्रक्रिया की कुछ आवश्यकताओं को इस प्रावधान में पढना होगा।

61. यह कानून का एक स्थापित सिद्धान्त है, जैसा कि पहले वर्णित है कि न्यायालय आमतौर पर एक ऐसी व्याख्या को अपनायेगी, जो किसी प्रावधान को असंवैधानिक घ ोषित करने के विपरीत प्रासांगिक प्रावधानों को जैसे सिद्धान्तों की सहायता से किसी कानून की संवैधानिकता के लिए अनुकूल और झुकाव वाला हो। न्यायालय उन कमियो को भी पूरा कर सकती है, जो विधायिका द्वारा अपनाने में छोड दी गयी हैं। हमारा यह विचार है कि धारा 12 (5) की व्याख्या करते समय इन दोनों सिद्धान्तों को लागू किया जाना चाहिए। यह इन सिद्धान्तों का अनुपयोग है, जो प्रावधान को संवैधानिक बना देगा और समानता के सिद्धान्त के खिलाफ नहीं होगा, बल्कि प्रावधान का अनुप्रयोग अधिक प्रभावी हो जायेगा।

62. ''समाज सेवा'' और मास मीडिया जैसी अस्पष्ट अभिव्यक्तियों के लिए निश्चितता उन प्रावधानों के तहत प्रदान की जा सकती है, जो उचित नियमों को तैयार करके या न्यायिक घोषणाओं के माध्यम से भी समझाने में सक्षम हैं। इस प्रावधान के दायरे और 2005 के अधिनियम के अन्य भागों पर इसके प्रभावों की जांच करने के

लिए, अधिनियम की योजना को वापस संदर्भित करना महत्वपूर्ण है। अधिनियम के प्रावधानों के तहत, विशेष रूप से धारा 4, 12, 18, 19, 20, 22, 23 और 25 के तहत, यह स्पष्ट है कि केन्द्रीय या राज्य सूचना आयोग, जैसा भी मामला हो, न केवल न्यायिक न्यायाधिकरण से अलग प्रकृति की न्यायिक शक्तियों का प्रयोग करता है, बल्कि एक दीवानी न्यायालय की शक्तियों के साथ भी निहित है। इसलिए एक सूचीबद्ध करने की आवश्यकता है, जहां एक व्यक्ति को जानकारी की आवश्यकता होती है और इसकी निष्पादन को दूसरे द्वारा चुनौती दी जाती है। आयोग दो प्रकार की दंडात्मक शक्तियों का प्रयोग करता हैः पहला, धारा 20(1) के संदर्भ में, यह अधिनियम के प्रावधानों का उल्लंघन करने वालों या उल्लंघन करने वालों पर जुर्माना लगा सकता है और दूसरा, धारा 20(2) केन्द्रीय और राज्य सूचना आयोग को जांच करने और सम्बन्धित अनुशासनात्मक प्राधिकरण को कानून के अनुसार दोषी अधिकारी के खिलाफ उचित कार्यवाई करने का निर्देश देने का अधिकार देती है। अतः आयोग के पास सिविल के साथ–साथ दंडात्मक परिणामों वाले आदेश पारित करने की शक्तियां हैं। इसके अलावा आयोग को निगरानी और सिफारिश करने की शक्तियॉ दी गयी है। धारा 23 के संदर्भ में, दीवानी न्यायालायों की अधिकारिता को स्पष्ट रूप से वर्जित कर दिया गया है।

72. सूचना आयोग, एक निकाय के रूप में, अपने सदस्यों के माध्यम से व्यापक पैमाने पर कार्य करता है, जिसमें न्यायनिर्णाक, पर्यवेक्षी और दंडात्मक कार्य शामिल है। सूचना तक पहुॅच एक वैधानिक अधिकार है। जैसा कि उपर बताया गया है, यह अधिकार कुछ संवैधानिक और वैधानिक सीमाओं के अधीन है। 2005 के अधिनियम में ही छूट प्राप्त जानकारी के साथ–साथ उन क्षेत्रों का उल्लेख किया गया है, जहॉ अधिनियम निष्क्रिय होगा। केन्द्रीय और राज्य सूचना आयुक्तों को कुछ परिस्थितियों में और निर्दिष्ट स्थितियों में जानकारी देने से इंकार करने की शक्ति दी गयी है। जानकारी के प्रकटीकरण के लिए, जिसमें किसी तीसरे पक्ष के प्रति पूर्वाग्रह का प्रश्न शामिल है, संबंधित प्राधिकारी से अपेक्षा की जाती है कि वह तीसरे पक्ष को नोटिस जारी करें जो एक अभ्यावेदन कर सकता है और इस तरह के अभ्यावेदन से 2005 के अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार निपटा जाना है। भारत में कानून की यह स्थिति कुछ अन्य देशों में प्रचलित कानून के स्पष्ट विपरीत है जहां किसी तीसरे पक्ष से जुडी जानकारी का खुलासा उस पक्ष की सहमति के बिना नहीं किया जा सकता है। हालांकि, प्राधिकरण दर्ज किए जाने वाले कारणों के लिए इस तरह के प्रकटीकरण का निर्देश दे सकता है, यह कहते हुए कि सार्वजनिक हित निजी हित से अधिक है। इस प्रकार इसमें एक न्यायिक प्रक्रिया शामिल है जहॉ पक्षों को सुनने की आवश्यकता होती है, उचित निर्देश जारी किए जाने होते हैं, आदेशों को उचित दिमाग के उपयोग और वैध कारणों से पारित करने की आवश्यकता होती है। 2005 के अधिनियम के प्रावधानों के तहत सम्बन्धित अधिकारियों द्वारा शक्तियों का प्रयोग और आदेश पारित करना मनमाना नहीं हो सकता है। यह प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों और ऐसे

प्राधिकरण द्वारा विकसित प्रक्रिया के अनुरूप होना चाहिए। प्राकृतिक न्याय के तीन अनिवार्य पहलू है। सूचना का अनुदान, सुनवाई का अनुदान और तर्कपूर्ण आदेश पारित करना। इस बात पर विवाद नहीं किया जा सकता है कि 2005 के अधिनियम के तहत अधिकारी और न्यायाधिकरण अर्ध–न्यायिक कार्यो का निर्वहन कर रहे हैं।

73. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (आई) बनाम समाज कल्याण संस्था 32 ने स्पष्ट किया कि जहॉ दो या दो से अधिक पक्ष एक–दूसरे के दावे का विरोध कर रहे हैं और पक्षकारो के बीच प्रतिद्वंदी दावों पर निर्णय लेने के लिए वैधानिक प्राधिकरण की आवश्यकता है, ऐसे वैधानिक प्राधिकरण को अर्ध–न्यायिक माना जा सकता है और उसके द्वारा दिए गए निर्णय को अर्ध–न्यायिक आदेश के रूप में माना जा सकता है। इस प्रकार, जहॉ दो प्रतिद्वंदी पक्षों के बीच एक समझौता है और ऐसे विवाद का निर्णय करने के लिए वैधानिक प्राधिकरण की आवश्यकता है, अर्ध–न्यायिक प्राधिकरण के किसी अन्य विशेषताओं के अभाव में, ऐसा वैधानिक एक अर्ध–न्यायिक प्राधिकरण है। कानूनी सिद्धांत जो विभिन्न निर्णयों से उभरते हैं कि कब एक वैधानिक प्राधिकरण का कार्य एक अर्ध–न्यायिक कृत्य होगा वे हैं– (क) किसी कानून के तहत सशक्त एक वैधानिक प्राधिकरण जो कोई कार्य करने के लिए सशक्त है। (ख) जो विषय को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करेगा। (ग) हालांकि जहॉ कोई लिस या दोनो विवादित पक्ष नहीं है और प्रतिस्पर्धा प्राधिकरण व विषय के बीच में है; और (घ) वैधानिक प्राधिकरण को कानून के तहत न्यायिक रूप से कार्य करने की आवश्यकता है। उक्त प्राधिकरण का निर्णय अर्ध–न्यायिक है।

74. दूसरों शब्दों में, एक प्राधिकरण को अर्ध–न्यायिक के रूप में वर्णित किया जाता है जब उसके पास न्यायिक प्रावधानों की कुछ विशेषताएं या जाल होते हैं लेकिन सभी नहीं, हमारे सामने जो मामला है, उसमें एक झूठ है। जानकारी मांगने वाले पक्ष के अनुरोध को नीचे दिए गये अधिकारियों द्वारा अनुमानित या अस्वीकृत किया जाता है और आयोग के समक्ष दोनों पक्षों द्वारा इसका विरोध किया जाता है। ऐसे मामले भी हो सकते हैं जहॉ अनुरोध की गयी जानकारी के प्रकटीकरण से कोई तीसरा पक्ष प्रतिकूल रूप से प्रभावित होता है। यह स्पष्ट है कि संबंधित अधिकारियों, विशेष रूप से सूचना आयोग के पास अदालत के आवश्यक गुण और जाल होता है। 2005 के अधिनियम के तहत परिभाषित इसकी शक्तियां ओर कार्य भी पर्याप्त रूप से इंगित करते हैं कि इसके पास न्यायालय प्रणाली के समान न्यायिक शक्तियां हैं। वे गंभीर परिणामों वाले मामलों को निर्णय लेते हैं। आयोग से यह तय करने के लिए कहा जा सकता है कि सूचना का अधिकार कहॉ तक प्रभावित होता है, जहॉ मांगी गई जानकारी से इंकार किया जाता है या क्या मांगी गयी जानकारी ''छूट'' प्राप्त है या ''निजता के अधिकार'' में बाधा डालती है या जहॉ यह अधिनियम की प्रयोज्यता के ''न जाने वाला क्षेत्र'' में आती है। अधिकारियों के लिए नियमित रूप से जानकारी के लिए अभी अनुरोधों की अनुमति देना अनिवार्य नहीं है। 2005 का अधिनियम अधिकारियों पर एक दायित्व अधिरोपित करता है कि वे प्रत्येक मामले की गंभीरता से

जांच करें और इसके परिणामों और दूसरों के अधिकारों पर प्रभावों के बारे में पूरी तरह से सतर्क रहें। यह जानकारी के लिए एक सरल प्रश्न हो सकता है लेकिन किसी तीसरे पक्ष या किसी व्यक्ति के अधिकार पर दूरगामी परिणाम हो सकते हैं जिसके संबंध में ऐसी जानकारी मांगी जाती है। किसी व्यक्ति की निजता के अधिकार में अनुचित हस्तक्षेप, जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 या किसी अन्य लागू कानून के तहत संरक्षित है, की अनुमति नहीं होगी। गोविन्द बनाम एम.पी.33 के राज्य में इस न्यायालय में अभिनिर्धारित किया कि–

''22. ...निजता–गरिमा के दावों की सावधानी से जांच की जानी चाहिए और केवल तभी अस्वीकार किया जाना चाहिए जब एक महत्वपूर्ण जवाबी हित को बेहतर दिखाया जाए।''

''राम जेठमलानी बनाम भारत संघ 34'' में इस न्यायालय ने कहा है कि निजता का अधिकार जीवन के अधिकार का एक अभिन्न अंग है। इस प्रकार इस प्राधिकरणों द्वारा निर्णय लेने की प्रक्रिया केवल प्रशासनिक प्रकृति की नहीं है। इन प्राधिकरणों के कार्य केवल राज्य प्राधिकरण के प्रशासनिक कार्यो के बजाए अदालतों के न्यायिक कार्यो के प्रति अधिक संरेखित है।

75. ''अर्ध–न्यायिक'' एक ऐसा शब्द है जिसका उपयोग हमेशा अत्याधिक स्पष्टता और सटीकता के साथ नहीं किया जा सकता है। एक प्राधिकरण जो न्यायिक कार्यो या न्यायिक अधिकारियों के अनुरूप कार्यो का प्रयोग करता है, उसे आमतौर पर ''अर्ध–न्यायिक'' कहा जाता है। पी0 रामनाथ अय्यर द्वारा लिखित एडवांस्ड लॉ लेक्सिकन (तीसरा संस्करण, 2005) में, ''अर्ध–न्यायिक'' अभिव्यक्ति को निम्नानुसार समझाया गया हैः

''अर्ध–न्यायिक'' कार्य, जो विवेक का कोई दुरूपयोग नहीं होने पर मान्य होते हैं, अक्सर नागरिकों के मौलिक अधिकारों को निर्धारित करते हैं। वे अदालतों द्वारा समीक्षा के अधीन है। (ब्लैक, 7वीं संस्करण, 1999)

''अर्ध–न्यायिक'' एक ऐसा शब्द है जिसे आसानी से परिभाषित नहीं किया जा सकता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में, वाक्यांश अक्सर एक प्रशासनिक एजेंसी द्वारा लिए गए न्यायिक निर्णयों को शामिल करता है–परीक्षण न्यायाधिकरण की प्रकृति है न कि वह क्या कर रहा है। इंग्लैंड में अर्थ न्यायिक प्रशासनिक श्रेणी से सम्बन्धित है और इसका उपयोग उन परिस्थितियों को कवर करने के लिए किया जाता है जहां प्रशासक कुछ रूपों का पालन करने और संभवतः सार्वजनिक सुनवाई करने के लिए कानून द्वारा बाध्य है, लेकिन जहॉ वह अंतिम निर्णय तक पहुॅचने में एक स्वतंत्र एजेंट है यदि नियम का उल्लंघन हुआ है, तो निर्धारण को अलग कर दिया जा सकता है, लेकिन यह दिखाने के लिए पर्याप्त नहीं है कि प्रशासन एक निश्चित नीति के पक्ष में पक्षपाती है, या सबूत एक अलग निष्कर्ष की ओर इशार करते हैं...{जॉर्ज व्हाइटक्रॉस पैटन, न्यायशास्त्र की एक पाठयपुस्तक 336(जी.डब्लू. पैटन और डेविड पी.डरहम, एड., चौथा संस्करण,1972)} एक ऐसे

कार्य का वर्णन करना जो न्यायिक कार्य से मिलता जुलता है जिसमें एक विवाद का निर्णय लेना और तथ्यों और किसी प्रासांगिक कानून का पता लगाना शामिल है, लेकिन इसमें भिन्नता है कि यह अंततः कानून के अनुप्रयोग के बजाए एक कार्यकारी विवेकाधिकार के प्रयोग पर निर्भर करता है (ऑक्सफोर्ड लॉ डिक्शनरी, 5 वीं संस्करण,2003)। जब कानून किसी अधिकारी को कुछ तथ्यों को उस तरीके से देखने का कर्तव्य देता है, जो वह विशेष रूप से निर्देशित करता है, लेकिन अपनी प्रकृति में न्यायिक विवेकाधिकार के बाद, कार्य अर्ध–न्यायिक होता है। किसी कार्यपालक या प्रशासनिक अधिकारी के न्यायिक कृत्यों का या उनसे संबन्धित। न्यायिक के गुणों को साझाा करना ओर उसके बारे में अनुमान लगाना; अनिवार्य रूप से चरित्र न्यायिक लेकिन न्यायिक शक्ति या कार्य के भीतर नहीं और न ही संवैधानिक रूप से परिभाषित न्यायापालिका से संबंधित है।

76. एच0पी0 के राज्य में यह अदालत। वी0 महेन्द्र पाल 35 ने अभिनिर्धारित किया कि ''अर्ध–न्यायिक'' अभिव्यक्ति को वह कहा गया है जो न्यायिक और प्रशासनिक कार्य के बीच में है। यदि प्राधिकरण के पास विचाराधीन निर्णय पर पहुॅचने में न्यायिक रूप से कार्य करने का कोई स्पष्ट वैधानिक कर्तव्य है, तो इसे अर्ध–न्यायिक माना जाएगा। जहॉ किसी विवाद को निर्धारित करने का कार्य कानून के अनुप्रयोग के बजाए कार्यकारी विवेकाधिकार के आधार पर किया जाता है, यह एक अर्ध–न्यायिक कार्य है। एक अर्ध न्यायिक अधिनियम की अपेक्षा है कि कोई निर्णय मनमाने ढंग से या केवल प्राधिकरण के विवेकाधिकार में नहीं दिया जाना चाहिए, बल्कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के अनुसार दिया जाना चाहिए, जैसा कि प्रभावित पक्षों को सुनवाई का अवसर देने के बाद प्राधिकरण द्वारा की गयी जांच पर निर्धारित किया जाता है। 2005 के अधिनियम के प्रावधानों के तहत गठित प्राधिकरण और न्यायाधिकरण निश्चित रूप से न्यायिक कार्यो को करने वाले अर्ध–न्यायिक प्राधिकरण हैं।

26. तद्नुसार रिट याचिकाएं स्वीकार की जाती है। चुनौती के तहत आदेश रदद और अलग किये जाते हैं।

27. लंबित आवेदन यदि को हो, तद्नुसार निस्तारित किया जाता है।

(राजीव शर्मा, न्यायमूर्ति)